संत कवयित्री सहजोबाई के काव्य में नारी की प्रासंगिकता (मानव मूल्यों के संदर्भ में)

*डॉ. राजेश कुमार

उत्तरी भारत के संत सम्प्रदायों में चरणदासी सम्प्रदाय का विशेष महत्त्व है। संत चरणदास का आविर्भाव मेवात**1** क्षेत्र की पुण्य भूमि के डहरा (अलवर) नामक गाँव में हुआ था।**2** यह क्षेत्र अनादि काल से ऋषि–मुनियों, साधु–संतों की जन्म एवं कर्मस्थली रहा है। अनेक ज्ञात–अज्ञात संतों, साधुओं, कवियों के किस्से आज भी जन–जिव्हा पर अमर हैं। संत लालदास (धौलीदूब), संत भक्त पारीख (तिजारा)**3**, सेऊ और सम्मन**4**, भीरू जी**5** आदि अनेक संत–भक्त कवि इसी क्षेत्र में अवतरित हुए। लेकिन इन सब नक्षत्रों में सर्वाधिक देदिप्यमान नक्षत्र थे संत कवि चरणदास जी महाराज और उनकी शिष्या संत कवयित्री सहजोबाई।

लगभग 1590 वि. के आसपास ढोसी (वर्तमान नारनौल के पास) से चल कर एक भार्गव परिवार डहरा में रहने लगता है। उनके कुल में आठवीं पीढ़ी में पं. मुरलीधर भार्गव के घर में, माता कुंजोदेवी की कोख से एक महान् आध्यात्मिक, दार्शनिक एवं पारिमार्थिक दिव्यात्मा 'रंजीत' नाम से अवतरित होती है। आगे चल कर वही बालक 'रंजीत' गुरु शुकदेव मुनि की कृपा एवं आशीर्वाद से परम योगी, परम भागवत, भक्त शिरोमणि, कृष्णावतार स्वरूप श्यामचरणदास नाम से जगत् में विख्यात हुआ। इन्हीं महान् संत चरणदास जी के शताधिक शिष्यों में संत कवयित्री सहजोबाई सिरमौर थीं। वे सांसारिक रिश्ते से संत चरणदास जी की बुआ श्रीमती अनूपीदेवी, जो कोटकासिम के श्री हरिप्रसाद भार्गव की पत्नी थीं; की कोख से उत्पन्न हुई थीं। अतः उनकी बुआ की लड़की, बहन थी। संत चरणदास जी महाराज ढूसर थे किन्तु संत कवयित्री सहजोबाई ढूसर नहीं थीं। उनके मामा ढूसर थे, वे नहीं।

संत सहजोबाई का जन्म सावन सुदी 5, वि.सं. 1782 में परिक्षितपुरा (दिल्ली) में हुआ था। उस समय संत गुरु चरणदास जी की आयु 22 वर्ष थी। 12 वर्ष की अवस्था में संत सहजोबाई ने साधक वृत्ति धारण की और 80 वर्ष की अवस्था में वि.सं. 1862 के माघ सुदी पंचमी को पंचतत्व में विलीन हो गईं। संत सहजोबाई ने मात्र 18 वर्ष की अवस्था में 'सहज प्रकाश'**6** नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना की। इसके बाद इन्होंने और अनेक पदों की रचना की।

संत कवयित्री सहजोबाई के अविर्भाव काल की धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं साँस्कृतिक परिस्थितियाँ अत्यन्त जटिल थीं। बादशाह औरंगजेब की निरंकुशता से जन–मानस आकुल–व्याकुल था। उस समय देश में अनेक विघटनकारी तत्व साँस्कृतिक ह्रास के लिए तत्पर थे। सर्वत्र त्राहि–त्राहि मच रही थी। ऐसे समय में संत चरणदास एवं सहजोबाई का अवतरण तप्त हृदय जनता के लिए किसी वर्षा की फुहार से कम नहीं था। आपसी वैमनस्य की आग को शांत करने का 'सबसे महान् कार्य जो संत चरणदास एवं सहजोबाई ने किया था।**7** आज भी उसकी प्रासंगिकता से नकारा नहीं जा सकता।

संत सहजोबाई ने अपने 'सहज प्रकाश' (1800 वि.) एवं अन्य रचनाओं के माध्यम से यह सब कर दिखाया, जो आज 200 वर्ष बाद भी अपनी प्रासंगिकता ज्यों की त्यों बनाए हुए है। उनका गुरु भक्ति में अटूट विश्वास एवं भगवद्–भक्ति का समन्वित रसायन आज भी अनेक पथ–भ्रमित सांसारिकों का पद–प्रदर्शन एवं दुःख दूर करने में

समर्थ है। जेम्स हेस्टिंग्स के अनुसार 'आपदाओं के उस युग' का सच आज भी बदला नहीं है। उस समय चतुर्दिक अशांति, वर्ग वैषम्य–वर्ग संघर्ष, राज्य लिप्सा, महत्त्वाकांक्षी हथकंडे, रक्तपात, विद्रोह, अविश्वास, धार्मिक आडम्बर, प्रतिशोध, हिंसा अनैतिकता एवं साँस्कृतिक ह्रास का जो वातावरण था, वह आज भी नाम–रूप–भेद से भिन्न नहीं है। ऐसे विषद्–काल में फँसे हुए दीन–दुखियों को संत सहजोबाई की 'वाणी' से एक सम्बल मिला था। कहने का अभिप्राय यह है कि वह मानव–मूल्यों के ह्रास का युग था।

बात मानव मूल्यों के ह्रास की है। 'मूल्य' क्या है? वस्तुतः समाज के बदलते सम्बन्धों के कारण जो विघटन होता है, वही मूल्यों का ह्रास कहलाता है। यहाँ 'मूल्य' शब्द का अर्थ अर्थशास्त्रीय नहीं है। यहाँ 'मूल्य' से अभिप्राय किसी समाज के विश्वास और मान्यताओं से है। साहित्य, कला, संस्कृति, आचार–विचार, अध्यात्म और मानवीय गुण कवि दिनकर के शब्दों में 'मूल्य वे मान्यताएँ हैं जिन्हें मार्गदर्शक ज्योति मान कर सभ्यता चलती है।'**8**

समय और परिस्थिति के अनुसार मूल्यों में भी परिवर्तन–परिवर्धन होते रहते हैं। प्रत्येक काल अपने पूर्व काल से कुछ भिन्न होता ही है। सामाजिक, साँस्कृतिक और आर्थिक परिस्थितियों के बदलने से मानव–मूल्यों में भी बदलाव होता है। किन्तु मानव मूल्य 'साँस्कृतिक सत्य' होते हैं। इन्हीं साँस्कृतिक सत्यों का उद्घाटन संत सहजोबाई ने अपने काव्य द्वारा प्रस्तुत किया है, जो आज भी प्रासंगिक है।

तत्कालीन विषम परिस्थितियों में 18 वर्ष की छोटी उम्र में एक संभ्रांत महिला संत द्वारा 'सहज प्रकाश' जैसे भक्ति, दर्शन एवं अध्यात्म के उच्च विचारों से समन्वित ग्रन्थ की रचना करना अपने आप में एक महान् आश्चर्य है। अपने गुरु परमयोगी, संत एवं भगवद्–भक्त चरणदास जी के समक्ष ही संत सहजोबाई ने अपना विशिष्ट स्थान बना लिया था। जेम्स हेस्टिंग्स भी यही मानते हैं।**9** सच तो यह है कि भक्ति और साधना के क्षेत्र में वह भक्तिमति मीरा और करमाबाई के समकक्ष साधक थीं।

'प्रेम लगन तामें अधिकाई, करमा अरु मीरा मनु आई।10

संत कवयित्री सहजोबाई को अपने गुरु संत शिरोमणि चरणदास में अविकल एवं अटूट श्रद्धा थी। उनका गुरु के प्रति प्रस्तुत किया गया चिन्तन, मनन अन्य निर्गुणी संतों की तरह आज भी प्रासंगिक है। यद्यपि आज 'गुरु' शब्द का अवमूल्यन अत्यधिक हो चुका है, फिर भी वास्तविकता यह कि वस्तुतः 'गुरु' गुरु ही होता है जिन खोजा तिन पाइया। 'गुरु' खोज भाग्य से ही पूरी होती है। संत सहजोबाई की दृष्टि में गुरु चार प्रकार के होते हैं –

गुरु हैं चार प्रकार के, अपने अपने अंग।

गुरु पारस दीपक गुरु, मलयागिरि गुरु भृंग।।6।।

चरनदास समरथ गुरु, सर्व अंग तेहि माहिं।

जैसे कूं वैसा मिलै, रीता छाँडै नाहिं।।7।।11

अर्थात् लौहरूप शिष्य के लिए गुरु पारसमणि, अज्ञानतिमिरावृत्त शिष्य के लिए दीपक, पलाश रूप शिष्य के लिए मलयागिरि तथा कीट रूप शिष्य के लिए भ्रमर के समान है। बुद्धिमान एवं भाग्यशाली शिष्य ही ऐसे सर्वगुण सम्पन्न गुरु को प्राप्त कर सकता है। अन्यथा –

जैसा गुरु और वैसा ही चेला।

दोनों नर्क में ठेलमठेला।।

संत सहजोबाई ने 'गुरु–गोविन्द' में से गुरु को प्रथम महत्त्व दिया है। संत कबीर से लेकर सभी सगुण–निर्गुण कवियों ने 'गुरु' के महत्त्व को प्रायः इसी रूप में स्वीकार किया है। संत कवयित्री सहजोबाई भी दृढ़ता के साथ कहती हैं –

राम तजूं पै गुरु न बिसारूं। गुरु के सम हरि कूं न निहारूं।

– – –

चरनदास पर तन मन वारूँ। गुरु न तजूँ हरि कूँ तजि डारूँ।।2।।12

अपनी इस ..... के लिए वे तर्क भी देती हैं? जिनके प्रकाश में उनका यह चिन्तन अत्यधिक प्रासंगिक है –

हरि ने जन्म दियो जग माहीं। गुरु ने आवागव छुटाहीं।।

हरि ने पाँच चोर दिये साथा। गुरु ने लई छुटाय अनाथा।।

हरि ने कुटुम्ब जाल में मेरी। गुरु ने काटी ममता बेरी।।

हरि ने रोग भोग डरझायौ। गुरु जोगी कर सबै छुटायौ।।

हरि ने कर्म मर्म भरमायौ। गुरु ने आतम रूप लखायो।।

हरि ने मो सूँ आप छिपायौ। गुरु दीपक दै ताहि दिखायौ।।13

किन्तु शर्त यह है कि गुरु द्वारा दर्शाए मार्ग पर चलने वाला शिष्य उस परम सत्ता के रहस्य को जान सकता है, जिसने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड रचा है। वही शिष्य जो – 'गुरु के पंथ चले सतनादी। सहजो पावै भेद अनादी।।**14** लेकिन साथ ही गुरु आज्ञा के विमुख चलने वाला बार–बार जन्म–मरण के बन्धनों में बँधता रहता है। कहा है –

जो काई गुरु की आज्ञा भूलै। फिर फिर कष्ट गर्भ में झूलै।।15

इसलिए मानव–मूल्यों के ह्रास के दौर में संत सहजोबाई चेतावनी देती हुई 'गुरु महिमा' को रेखांकित करती हैं –

सहजो कारज जगत के, गुरु बिन पूरे नाहिं।

हरि तो गुरु बिन क्यों मिलै, समझ देख मन मांहि।।36।।

परमेसर सूँ गुरु बड़े, मावत बेद पुरान।

सहजो हरि के मुक्ति है, गुरु के घर भगवान।।37।।16

कहने का अभिप्राय यह है कि आज भी यदि शिष्य गुरु द्वारा प्रदर्शित मार्ग में दृढ़–वृती होकर चले, आज्ञानुपालन करे, कपट रहित रहे तो निश्चित रूप से गरु–ज्ञान के दीपक से उसका अज्ञान–तिमिराच्छन्न हृदय प्रकाशित हो जाएगा। सच तो यह है कि गरु धोबी के समान शिष्य के मन का कालुष्य मिटाता है, कुम्भकार के समान उनका निर्माण कर पकाता है और रंगरेज के समान जीवन में सतरंगी छटा बिखेर देता है।**17** लेकिन साथ ही ऐसे गुरुओं से भी सावधान रहने की आवश्यकता है –

सहजो गुरु बहुत फिरै, ज्ञान ध्यान सुधि नाहिं।

तार सकें नाहिं एक कूँ, गहै बहुत की बाहिं।।61।।18

वर्तमान काल में ऐसे गुरुओं का जमघट शिक्षा के केन्द्रों में सर्वत्र देखने को मिलता है। साथ ही संत कवयित्री सहजोबाई ने शिष्यों की भी कुछ कोटियाँ बताई हैं, वे भी अत्यन्त प्रासंगिक जान पड़ती हैं। सदैव गुरु में ही दोष ढूँढ़ने वाले शिष्य प्रायः मिट्टी, पत्थर या लकड़ी के समान होते हैं। उन्हें यदि पारस रूप गुरु मिल भी जाए तो भी वे कंचन नहीं बनेंगे क्योंकि पारस रूप गुरु तो लोहा–रूप शिष्य को ही कंचन बनाने में समर्थ होंगे। अतः संत सहजोबाई कहती हैं –

सिख माटी सिख पाथरा, सिख लकड़ी सम जोय।

सहजो गुरु पारस मिले, कैसे कंचन होय।।19

वर्तमान काल के गुरु–शिष्य सम्बन्धों पर प्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रो. यशपाल का कथन कितना सटीक है– 'पहले (गुरु की) इज्जत ज्यादा थी, अब नहीं होती। पहले शिक्षकों से हर विषय पर मार्गदर्शन लिया जाता था। अब पैसे का जोर है, भ्रष्टाचार बढ़ा है। घूस देने वालों की इज्जत हो गई है। शिक्षकों का रुतबा छोटी जगहों से लेकर महानगरों तक में कम हुआ है।' **20**

गिरते मानव–मूल्यों की दृष्टि से संत सहजोबाई ने 'सत्संग' की आवश्यकता एवं प्रासंगिकता पर अत्यधिक जोर दिया है। आज की भौतिक चकाचौंध ने हमारे आचार–विचार को झंझोड़ कर रख दिया है। नैतिक–अनैतिक शब्द बेमानी लगने लगे हैं। निशाचरी वृत्ति ने यों तो युवा पीढ़ी को पथ–भ्रमित कर दिया है। व्यक्ति की संगत बिगड़ गई है। बाबा तुलसी ने 'सत्संग' के महत्त्व को बहुत पहले रेखांकित कर दिया था, किन्तु संत सहजोबाई तक भी 'संत समागम दुर्लभ' था। अतः उन्हें कहना पड़ा कि सत्संग में जो सुख है, वह कुसंग में कहाँ? वे कहती हैं–

साध संग में चाँदना, सकल अँधेरा और।

सहजो दुर्लभ पाइये, सतसंगत में ठौर।।6।।

सत संगत की नाव में, मन दीजै नर नार।

टेक बल्ली दृढ़ भक्ति की, सहजो उतरै पार।।7।।

साध संग तीरथ बड़ो, तामें नीर विचार।

सहजो न्हाये पाइये, मुक्ति पदारथ पार।।8।।

जो आवै सतसंग में, जाति बरन कुलखोय।

सहजो मैल कुचैल जल, मिलै सुगंगा होय।।9।।21

और तो और कौआ भी सत्संगति को प्राप्त हो जाए तो वह हंस वृत्ति का हो जाता है। संत कवयित्री सहजोबाई के अनुसार 'सत्संग रूपी उद्यान में साधु रूपी हरे–भरे छाया एवं फलदार वृक्ष होते हैं। उनकी अमृतमयी वाणी ही उनकी कलियाँ हैं। वहाँ हुई सत्यासत्य सम्बन्धी चर्चा ही नाना प्रकार के फल–फूल हैं। ऐसा सुन्दर उद्यान आज के दूषित पर्यावरण में बड़े भाग्य से ही मिल पाता है।

यदि सर्वत्र ऐसे उद्यान हो जाएँ तो फिर हमारी पथ–भ्रष्ट पीढ़ी के किसी नाइट क्लब या पार्टी में जाने की क्या आवश्यकता है?

तृष्णा, सब रोगों की जड़ है। आज तृष्णा की मृग मरीचिका से सारा संसार भ्रमित हो रहा है। यदि यह 'तृष्णा' रूपी रोग समाप्त हो जाए तो सर्वत्र सुख ही सुख व्याप्त हो जाए। संत सहजोबाई का यह कथन इस दृष्टि से प्रासंगिक है, जब वे कहती हैं –

ना सुख दारा सुत महल, ना सुख भूप भये।

साध सुखी सहजो कहै, तृष्णा रोग गए।।41।।22

वाणी का भी अपना महत्त्व होता है। कहते हैं रंग साम्य होने के बावजूद बसन्त गमन पर कौवा और कोयल की पहचान उनकी आवाज से ही होती है। 'वाणी' किसी व्यक्तित्व का आईना होती है। एक वेश–विन्यास वाले दो व्यक्तियों की पहचान कि उनमें साधु कौन है और असाधु कौन है? 'वाणी' के द्वारा ही होती है। संत सहजोबाई ने साधु और दुष्ट की वाणी के 12–12 प्रकार बताए हैं।**23** 'वाणी के ये प्रकार आज भी प्रासंगिक कहे जा सकते हैं।

संसार असार है, मिथ्या है, भ्रम है। काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह आदि के कारण हम इस तथ्य को नकार देते हैं और इसे शाश्वत मान कर उल्टे सीधे कर्म करते रहते हैं। परिणामतः 'कर्म प्रधान विश्व करि राखा। जो जस करहि सो तस फल चाखा।' इस फ की परिणति चौरासी लाख योनियों में भटकाव के बाद पूरी होती है। मनुष्य देह दुर्लभ है। इस तथ्य को समझाते हुए 'वैराग्य उपजावन के अंग' के 49 दोहों में संत सहजोबाई ने अपने विचार व्यक्त किए है, जो मानव मूल्यों को समझने के लिए आज भी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं। वे कहती हैं –

बहुत गई थोड़ी रही, यह भी सहसी नाहिं।

जन्म जाय हरि भक्ति बिनु, सहजो झुर मन मांहि।।49।।24

अतः समय रहते हुए हमें इस सत्य को समझ लेना चाहिए। ऊपर हमने 84 लाख योनियों की बात की है। यह योनियाँ 'कर्मानुसार' सभी को भोगनी पड़ती हैं। सद्कर्मों का फल अच्छा और दुष्ट कर्मों का फल बुरा होता है। इसी अनुसार जीवात्मा अनेकानेक योनियों में भटकती रहती है। बार–बार जन्म लेती और मरती है। इस 'कर्म–बन्धन' से मुक्ति का एक ही उपाय है – **वासना का त्याग।** वासना अपने किसी रूप में शुभ नहीं कही जा सकती। इसीलिए संत सहजोबाई कहती हैं –

चरनदास गुरु मोहिं बताई। तजो वासना सज जो बाई।।56।।25

क्योंकि जीवात्मा अपनी प्रत्येक यानि में कर्मानुसार ही जन्म लेती है। इस संदर्भ में संत सहजोबाई का निम्नलिखित कथन आज भी प्रासंगिक है –

पशु पंछी नर सुर असुर, जलचर, कीट पतंग।
सब ही उतपति कर्म की, सहजो नाना अंग।।5।।

– – –

देह छुटै मन में रहैं, सहजो जैसी आस।

देह जन्म जैसो मिलै, जैसे ही घर बास।।55।।26

इसलिए जीवात्मा को चाहिए कि यदि वह वासना ही रखती है तो परमेश्वर की वासना रखे –

परमेसुर की वासना, अन्त समय मन मांहि।

तन छूटै हरि कूँ मिलै, उपजै विनसै नाहिं।।59।।27

यही मोक्ष का मार्ग है, उपाय है। आवागमन से मुक्ति है। जन्म–मरण की यातना का त्याग है। मनुष्य योनि में ही हम परमेश्वर के प्रति आसक्त हो सकते हैं। अतः मनुष्य योनि ही सर्वश्रेष्ठ है। किसी अन्य संत ने भी कहा है – 'नर तेरा चोला, रतन अमोला, बिरथा खोवै मतना।' संत सहजोबाई भी यही कहती हैं –

चौरासी जोनी भुगत, पायौ मनुष सरीर।

सहजो चूकै भक्ति बिनु, फिर चौरासी पीर।।65।।28

यदि 'हरिभजन' नहीं किया तो परिणाम सामने हैं –

चार अवस्था खो दई, लियो न हरि को नाम।

तन छूटे जम कूटि है, पापी जग के ग्राम।।87।।29

'हरिभजन' दिखावा बन कर न रह जाए, यह विशेष ध्यान देने की बात है। पाँचों चोरों से बचते हुए ही जीवात्मा हरिनाम स्मरण कर पाने में समर्थ होगी। कहा भी है –

राम नाम यो लीजिए, जानै सुमिरण हार।

सहजो कै कर्तार ही, जानै ना संसार।।17।।30

संत सहजोबाई ने सुखी जीवन के लिए मनुष्य को 'नन्हा' बनने की हिदायत दी है। 'नन्हा' का अर्थ है छोटा या बालक। बालक बनने के लिए आवश्यक है कि मनुष्य अपने बड़प्पन के अहंकार का त्याग कर दे। ऐसे व्यक्ति की सर्वत्र पहुँच हो जाती है। जिस तरह नन्हा बालक किसी के आदेश, भय या अवमानना की परवाह किए बिना सर्वत्र जा सकता है उसी प्रकार निरहंकारी मनुष्य प्रभु के पास जाने में समर्थ हो सकता है। कहा है –

सहजो नन्हा बालका, महल भूप के जाय।

नारी परदा ना करै, गोदहि गोद खिलाय।।8।।

बड़ान जाने पाई है, साहेब के दरबार।

और ही सूँ लागी है, सहजो मोटी मार।।9।।31

भक्ति के क्षेत्र में संत सहजोबाई ने निर्गुण संतों से भिन्न मध्यम मार्ग को अपनाया है। आज के संदर्भ में उनका यह चिन्तन अत्यधिक प्रासंगिक है। उनके दोहों, चौपाइयों और पदों में उनके इस रूप को देखा जा सकता है। 'सहज प्रकाश' के दोहे–चौपाइयों में एक भावुक भक्त के दर्शन होते हैं तो उनके पदों में एक उच्च कोटि के दार्शनिक के। वे राम, कृष्ण, ब्रह्म, परमेश्वर सभी में एक ही रूप – परम सत्ता – को देखती हैं। वे निर्गुणात्मक सगुण ब्रह्म की उपसिका हैं। वे मीरा की तरह लोक लाज छोड़ कर कृष्ण की दीवानी भी हैं और निर्गुण ब्रह्म की उपासिका भी। सच तो यह है कि संत तुलसीदास के शब्दों में 'सगुनहिं अगुनहिं नहिं कुछ भेद।' दोनों एक ही हैं। इसलिए वे कहती हैं –

निराकार आकार सब, निर्गुन और गुनवन्त।
है नाहीं सूँ रहित है, सहजो यों भगवन्त।।1।।

– – –

वही आप परगट भयो, ईसुर लीलाधार।
माहिं अजुध्या और बृज, कौतुक किए अपार।।4।।
चार बीस अवतार धरि, जन की करी सहाय।
राम कृश्न पूरन भये, महिमा कही न जाय।।5।।32

उनका 'गीता' के चतुर्थ अध्याय के श्लोक सं. 6–7 में अटूट विश्वास है। वे कहती हैं –

भक्त हेत हरि आइया, फिर भी भार उतारि।
साधन की इच्छा करी, पापी डारे मारि।।6।।
निर्गुन सूँ सर्गुन भये, भक्त उधारन हार।
सहजो की दंडौत है, ताकूँ बारम्बार।।7।।33

ऐसे परमात्मा को संत सहजोबाई 'प्रेम–भक्ति' के द्वारा प्राप्त करना चाहती हैं। परमात्मा तक पहुँचने के और भी मार्ग हैं जैसे योगी योग द्वारा एवं ज्ञानी ज्ञान द्वारा उस तक पहुँचने का प्रयत्न करता है, किन्तु संत सहजोबाई मीरा की तरह प्रेम–भक्ति के द्वारा उसे पाना चाहती हैं। वे कहती हैं –

जोगी पावै जोग सूँ, ज्ञानी लहैं विचार।
सहजो पावै भक्ति सूँ, जाके प्रेम आधार।।11।।34

साथ ही वे नवधा–भक्ति के माध्यम से अपने आराध्य तक पहुँचना चाहती हैं, किन्तु मूलतः वे कृष्णभक्त नहीं हें। वे गुरु–कृपा से सगुण–निर्गुण दोनों रूप में एक ही ब्रह्म को देखती हैं।

इस प्रकार संत सहजोबाई का काव्य आज भी प्रासंगिक है। आज भी मनुष्य अज्ञानता, अधर्म, काम–क्रोधादि, अहंकार, वासना आदि दुर्गुणों से आवृत है। उनसे छुटकारा पाने के लिए सहजोबाई का काव्य आज भी मानव मूल्यों के संदर्भ में प्रासंगिक है। अंत में शुक सम्प्रदायाचार्य संत सरसमाधुरी शरण जी के शब्दों में यह कहंना चाहूँगा कि –

नमो नमो श्री सहजोबाई।
स्वतः सिद्ध सखिरूप अनुपम बानी 'सहज प्रकाश' बनाई।
गुरु महिमा प्रेमा भक्ति पराभक्ति अरु अनन्यता की रीति चलाई।।

– – –

***सह–आचार्य**
हिन्दी विभाग
राजकीय महाविद्यालय, उनियारा (टोंक)

संदर्भ सूची

1. मेवात – शब्द संस्कृत के कल्पित रूप 'मेदवा' (मेवत्ता – मेवात्ता – मेवात) से व्युत्पन्न है। मेवाती का उद्‌भव और विकास डॉ. एम. पी. शर्मा पृ. 22
2. श्री स्वामी चरणदास जी की स्मारिका, 16.9.77, अलवर, पृ. 22

3. 'भक्तमाल' नाभादास कृत, छन्द सं. 144, टीका छन्द सं. 559, 560
4. अनन्तदास कृत 'सेऊ और सम्मन की परचई' परिषद् पत्रिका, अक्टूबर 72, डॉ. महावीर प्रसाद शर्मा का लेख, पृ. 66–72
5. 'भीक' के दोहे : किफायतुल्ला सिद्दिकी, नूह (गुड़गाँव)
6. सहज प्रकाश : वेलविडियर प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद, सन् 1967
7. संत चरणदासी सम्प्रदाय और उसका साहित्य : डॉ. त्रिलोकीनाथ दीक्षित
8. साहित्य मुखी, पृ. 66
9. एनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड एथिक्स, ग्रन्थ 3, पृ. 364
10. लीलासागर : संत जोगजीत कृत, पृ. 226
11. सहज प्रकाश : सतगुरु महिमा को अंग, वेलविडिर प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद
12. सहज प्रकाश पृ.3
13. वही पृ. 3, छन्द सं. 12
14. वही पृ. 4, छन्द सं 16
15. वही पृ. 6, छन्द सं. 23
16. वही पृ. 8
17. वही पृ. 10
18. वही पृ. 10, गुरु महिमा, दो. 61
19. सहज प्रकाश पृ. 23
20. राजस्थान पत्रिका, रविवारीय, 4 सितम्बर, 2005
21. सहजोबाई की बानी (सहज प्रकाश) पृ. 12
22. सहज प्रकाश पृ. 15
23. वही पृ. 15–16
24. वही पृ. 20
25. वही पृ. 21
26. वही पृ. 20
27. वही पृ. 21
28. वही पृ. 21
29. वही पृ. 26
30. व ही पृ. 31
31. वही पृ. 33
32. वही पृ. 38–39
33. वही पृ. 39
34. वही पृ. 39